HINDUSTANI MUSIC VOCAL (034) . CLASS - XII

The following notes are from May 16th 2020 to June 30th 2020.

1. UNIT 1.2

Sadra, Dadra, Gram, Murchana, Alap, Tana.

2. UNIT 2.1

Classification of Ragas - Ancient, Medieval & Modern.

2.2

Historical development of the time theory of Ragas.

3. UNIT 3.1

I. Sangeet Ratnakar

II. Sangeet Parijat

* All students are advised to write these notes in their theory note books and learn them by heart.

Oli Bhattacharya
P. G. T. (Music)
15. 5. 2020.

Scanned with CamScanner

ठुमरी (Thumari)

गीत के इस प्रकार में राग की शुद्धता की तुलना में भाव और सौंदर्य को अधिक महत्व दिया जाता है। यह चपल और द्रुत प्रकृति की शैली है। अतः यह खमाज, पीलू, देश तिलंग, तिलक कामोद, काफी, भैरवी, झिझोटी, जोगिया आदि चपल रागों में गाई जाती है। इसमें दीपचंदी अथवा जतताली की संगत की जाती है। इसमें शब्दों को दोहराते हुए शब्दों का भाव विविध स्वर-समूहों द्वारा व्यक्त किया जाता है। ठुमरी में श्रृंगार रस की प्रधानता होती है। इसमें स्थायी व अंतरा दो भाग होते हैं तथा मींड और कण का विशेष प्रयोग होता है। अंतरा से जब स्थायी में आते हैं तो कहरवा ताल में आ जाते हैं। विभिन्न प्रकार के सुंदर बोल बनाते हुए पुनः पूर्व ठेके में आ जाते हैं। ठुमरी गायन के लिए मधुर और चपल कंठ की आवश्यकता होती है। ठुमरी गाते समय सुंदरता के लिए विभिन्न रागों की छाया दिखाते हैं। लखनऊ, बनारस तथा पंजाब की ठुमरियाँ विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। ऐसा कहा जाता है कि लखनऊ के अंतिम नवाब वाजिद अली शाह 'अख्तर पिया' ने गीत की इस शैली का आविष्कार किया। पंजाब की ठुमरियों में बारहों स्वरों का प्रयोग कर छोटी-छोटी पेचदार तानों का प्रयोग करते हैं। बनारस अंग की ठुमरियों में द्रुत और पेचदार स्वर समूह नहीं प्रयोग किए जाते, बल्कि शब्दों की बढ़त धीरे-धीरे लोचदार स्वर-समूहों द्वारा की जाती है।

ठुमरी का एक और प्रकार है जो लय और शब्द प्रधान है। इसके शब्द अनुप्रासयुक्त होते हैं। कुछ ठुमरियाँ ताल चमत्कार प्रधान होती हैं, जो सुनने में तीनताल की लगती हैं, किंतु वास्तव में झपताल या एकताल में होती हैं।

सादरा

यह एक ध्रुपद अंग की शैली है। झपताल में गाए जाने वाले ध्रुपद को सादरा कहा जाता है। ठुमरी के साथ में दादरा तथा ध्रुपद के साथ में सादरा आता है। सादरा गायन शैली तीवरा ताल मात्रा 7, सूलताल मात्रा 10, चाड 12 मात्रा की ताल अथवा 10 मात्रा की ताल झपताल में गाई जाती है।

Scanned with CamScanner

दादरा

यह गायन शैली ठुमरी से मिलती-जुलती है। इसे मुख्य रूप से कहरवा और दीपचन्दी में गाया जाता है और इसकी चाल ठुमरी से तेज होती है। यह पूर्णत: शृंगार रस में होती है, किंतु बावजूद इसके इसमें ठुमरी से अधिक उन्मुक्तता होती है।

Scanned with CamScanner

आलाप (Aalap)

राग का सौंदर्य बढ़ाने के लिए आलाप का प्रयोग किया जाता है। स्वरों का वह विस्तृत रूप जिसे आ आ का रूप देकर गाया जाता है, आलाप कहलाता है। आलाप तालबद्ध व बिना लय व ताल के भी प्रयोग किए जाते हैं। आकार या नोम तोम के रूप में आलाप राग के आरंभ तथा मध्य दोनों में प्रयोग किए जाते हैं। राग के बोलों के साथ भी आलाप किए जाते हैं, उन्हें बोल आलाप कहते हैं।

रागालाप (Ragalap)

प्राचीनकाल में राग के स्वरों का विस्तार जिसमें राग के दस लक्षणों का पालन होता था, रागालाप कहलाता था। राग के दस लक्षण इस प्रकार हैं—ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास, मंद्र, तार, अल्पत्व, बहुत्व, षाडवत्व और औडवत्व।

Scanned with CamScanner

रूपकालाप (Rupkalap)

रूपकालाप में इसके सभी लक्षणों का पालन होता था। इसमें प्रबंध धातुओं के समान रूपकालाप के विभाग करने पड़ते थे। गायक को राग में आलाप से पहले राग की व्याख्या करनी पड़ती थी।

आलिप्त गान (Alipta Gan)

इसमें राग के दसों का पालन करने के साथ-साथ आविर्भाव व तिरोभाव भी दिखाते थे।

स्वस्थान नियम का आलाप

आलाप का एक विशेष नियम जिसमें राग के सभी लक्षणों का पालन करते हुए आलाप को मुख्य चार भागों में विभाजित कर दिया जाता था, स्वस्थान नियम का आलाप कहलाता था। चारों हिस्सों अथवा विभागों को स्वस्थान कहते थे। चारों स्वस्थानों को एक के बाद ही क्रम से प्रयोग करते थे।

आश्रय राग (Ashraya Raag)

मुख्य दस थाट माने गए हैं व सभी थाटों के नाम पर एक-एक राग भी रखा जाता है, जिन्हें आश्रय राग कहते हैं। दस थाट के दस आश्रय राग बनते हैं, जैसे–राग भैरवी का थाट राग भैरवी, राग आसावरी का थाट राग आसावरी। इस प्रकार राग भैरवी व आसावरी अपने थाट के आश्रय राग हुए।

तान (Tana)

राग में दूसरा स्थान तान का आता है। स्वरों को द्रुत गति में गाने को तान कहते हैं। यह दुगुन, चौगुन, अठगुन आदि लयों में गाई जाती है। तान के अनेक प्रकार हैं, जैसे–सपाट तान, हलक की तान, कूट तान, सरल तान, आलंकारिक तान, छूट तान, मिश्र तान आदि। राग के बोलों के साथ भी तान का प्रयोग किया जाता है, उसे बोल तान कहते हैं। तानों के प्रयोग से राग को काफी समय तक बढ़ाया जा सकता है।

गमक (Gamak)

स्वरों का वह कंपन जिससे श्रोताओं के मन को प्रसन्नता मिले, गमक कहलाता है। आजकल गंभीरतापूर्वक स्वरोच्चारण को गमक कहते हैं। ध्रुपद व धमार गायन शैलियों में गमक का बहुत प्रचार है। आधुनिक समय में खयाल गायन का अधिक प्रचार होने के कारण गमक का प्रयोग कम हो गया है। गमक के 15 प्रकार माने गए हैं–कंपित, आंदोलित, आहत, प्लावित, उल्लासित, स्फूरित, त्रिभिन्न, हुम्फित, बली, लीन, तिरिप, मुद्रित, कुरुला, नामित एवं मिश्रित। इनमें लगभग सभी गमक हमारे संगीत में प्रयोग होते हैं, जैसे–खटका, मुर्की, कण, मीड, जमजमा, गिटकिडी आदि।

ग्राम (Grama)

ग्रामः स्वर-समूह स्याद्मूर्च्छना दे: समाश्रयः (संगीत दर्पण)

अर्थात स्वरों का ऐसा समूह जो मूर्च्छनाओं का आश्रय हो। ग्राम एक परिवार की तरह है। जिस प्रकार एक परिवार में सब लोग मिल-जुलकर मर्यादा की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार स्वरों का वह समूह जिसमें वादी-संवादी के साथ श्रुतियाँ व्यवस्थित हों और मूर्च्छना आदि का आश्रय हो, ग्राम कहलाता है। ग्राम की रचना स्वर से तथा स्वर की रचना श्रुति से मानी जाती है, अतः श्रुतियों के अव्यवस्थित होने पर ग्राम भी अव्यवस्थित हो जाते हैं।

Scanned with CamScanner

ग्राम तीन प्रकार के होते हैं–

1. षड्ज ग्राम 2. मध्यम ग्राम 3. गांधार ग्राम

1. षड्ज ग्राम

षड्ज ग्राम की स्थापना 22 श्रुतियों पर सप्तक के सात स्वरों से हुई है। स म प की चार-चार, ग व नी की दो-दो तथा रे और ध की तीन-तीन श्रुतियाँ मानी जाती हैं।

2. मध्यम ग्राम

मध्यम ग्राम की उत्पत्ति पंचम की एक श्रुति उतार देने से होती है, जैसे–सत्रहवीं श्रुति से एक श्रुति उतारकर उसे सोलहवीं श्रुति पर कर देने से मध्यम ग्राम की उत्पत्ति होती है।

3. गांधार ग्राम

गांधार ग्राम का प्रचार आधुनिक युग में बिलकुल नहीं है। प्राचीन काल में ही इसका प्रचार खत्म हो गया था। कहा जाता है कि प्राचीन काल में निषाद ग्राम को गंधर्वों द्वारा अपनाए जाने पर निषाद ग्राम को ही गांधार ग्राम कहा जाने लगा।

ग्राम से मूर्च्छना जाति अथवा रागोत्पत्ति होती है। यह गाया-बजाया नहीं जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य स्वरों, तान श्रुतियों, राग जाति और मूर्च्छना आदि को सुव्यवस्थित रूप प्रस्तुत करना है।

मूर्च्छना (Murchana)

वह स्वरावली जिसे सुनकर श्रोतागण मस्त, विभोर, मोहित, आकर्षित एवं आनंदविभोर हो जाएँ, मूर्च्छना कहलाती है। मध्यकाल में रागों के आरोह-अवरोह के स्वरूप को मूर्च्छना कहा जाता था तथा आधुनिक काल में मींड एवं गमक युक्त स्वर रचना को मूर्च्छना कहते हैं। सात स्वरों का क्रम से आरोह-अवरोह करना ही मूर्च्छना कहलाता है। मूर्च्छनाओं से राग की उत्पत्ति होती है। शारंगदेव जी ने मूर्च्छनाओं के चार भेद बताए हैं–

1. शुद्धा, 2. अंतर संहिता, 3. काकली संहिता व, 4. अंतरकाकली संहिता।

आधुनिक काल में थाट पद्धति का अधिक प्रचलन होने से मूर्च्छना का महत्व नहीं रह गया। थाटों को ही रागों का जन्मदाता माना जाता है। विद्वान विभिन्नता दर्शाने के लिए मूर्च्छना का प्रयोग करते हैं।

Scanned with CamScanner

राग-वर्गीकरण

कुछ समान गुणों के दृष्टिगत जब रागों को विभिन्न वर्गों में विभाजित किया जाता है, तब उसे राग-वर्गीकरण कहते हैं। प्राचीनकाल से ही रागों के वर्गीकरण की प्रथा रही है। समय की दृष्टि से विद्वानों ने राग-वर्गीकरण को तीन भागों में विभाजित किया है–

1. प्राचीनकाल
2. मध्यकाल
3. आधुनिक काल

तीन भागों में विभाजित राग-वर्गीकरण पद्धतियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

1. जाति वर्गीकरण
2. ग्रामराग वर्गीकरण
3. दशविध राग वर्गीकरण
4. शुद्ध, छायालग, संकीर्ण राग वर्गीकरण
5. राग-रागिनी वर्गीकरण
6. मेल राग वर्गीकरण
7. थाट राग वर्गीकरण

प्राचीनकाल

इसके अंतर्गत जाति, ग्राम, दशविध राग, शुद्ध, छायालग और संकीर्ण राग वर्गीकरण आते हैं।

जाति वर्गीकरण

स्वरों की वह विशिष्ट रचना जिसके दस लक्षण हों, जाति कहलाती है। राग गायन से पूर्व संगीत ग्राम मूर्च्छना जाति पर निर्भर था। भरतकाल में जाति गायन का ही प्रचार था, जिसका विकसित रूप 'राग गायन' के रूप में आज हमारे समक्ष है। महर्षि भरत ने षड्ज ग्राम और मध्यम ग्राम का वर्णन किया है। वैस्वर्य अतितारत्व एवं अतिमंद्रत्व के कारण गांधार ग्राम महर्षि भरत के द्वारा चर्चा का विषय नहीं बना।

आचार्य भरत के समय में 18 जातियाँ प्रचलित थीं व इन समस्त जातियों का विभाजन दो ग्रामों के अंतर्गत किया गया। फलतः कुछ जातियाँ षड्जग्रामिक तथा कुछ मध्यम ग्रामिक कहलाईं। दो या अधिक जातियों के संकर से संकीर्ण या मिश्र जातियों की उत्पत्ति मानी गई। ऐसी अवस्था में जातियों में 'पंचम' लोप्य स्वर रहे तो वह षड्जग्रामिक मानी जाएँगी, क्योंकि मध्यम ग्राम में 'पंचम' अविलोपी होता है। यदि 'धैवत' लोप्य स्वर हो, तो वे मध्यमग्रामिक मानी जाएँगी, क्योंकि षड्जग्राम में 'धैवत' का लोप विहित नहीं।

इस प्रकार दो ग्रामों के अंतर्गत समस्त जातियों को रखा गया।

Scanned with CamScanner

जाति गायन के लिए दस लक्षण निर्धारित किए गए यथा–अंश, ग्रह, तार, मंद्र, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, षड्वत्व, औडुवत्व। इन्हीं 10 लक्षणों के आधार पर जाति-गायन किया जाता था। जातियों के वर्गीकरण के लिए ग्राम थे। जातियाँ ग्रामों में विभक्त थी। षड्ज ग्राम के अंतर्गत षाड्जी, आर्षभी, धैवती तथा नैषादी चार शुद्ध तथा षड्जोदिच्वया षड्जकौशिकी तथा षड्जमध्यमा ये तीन विकृत जातियाँ थीं।

मध्यम ग्राम के अंतर्गत गांधारी मध्यमा तथा पंचमी ये तीन शुद्ध जातियाँ तथा रक्त गांधारी, गांधारी दिच्यवा, मध्यमी दिच्यवा, गांधार पंचमी, आंध्री, नंदयती, कार्माखी तथा कौशिकी ये आठ विकृत जातियाँ थीं। यदि समानता की दृष्टि से जाति वर्गीकरण व रागांग राग-वर्गीकरण की ओर दृष्टिपात किया जाए तो स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में प्रचलित जाति वर्गीकरण में किसी शुद्ध जाति को आधार मानकर जब उसके लक्षणों में परिवर्तन किया गया, तो विकृत जातियों की उत्पत्ति मानी गई। अर्थात षड्जग्रामिक जातियों में यदि 'षड्जग्राम' का आधार लिया गया तो माना जा सकता है, उनमें षड्जग्राम के कुछ-न-कुछ अंश अवश्य दिखते थे, तभी उन्हें षड्जग्रामिक जातियाँ कहा गया।

ठीक इसी प्रकार वर्तमान में प्रचलित 'रागांग राग-वर्गीकरण' में कुछ रागों को प्रमुख माना गया है। इन प्रमुख रागों की छाया या अंश जब अन्य रागों में पाई जाती है, तो वे राग उस प्रमुख अंग अथवा राग के अंतर्गत आते हैं।

ग्राम राग वर्गीकरण

जाति के पश्चात ग्राम राग वर्गीकरण आता है। ग्राम राग वर्गीकरण प्रणाली भारतीय संगीत की प्राचीन परंपरा के साथ जुड़ी हुई है। शुद्ध जातियों के लक्षणों में परिवर्तन करने से जातियों के अनेक भेद बनते थे। जातियों के इन्हीं परिवर्तित रूपों से ग्रामरागों की उत्पत्ति हुई। ग्राम रागों की कुल संख्या 30 मानी गई है।

सात प्रमुख शुद्ध ग्राम रागों को दो ग्रामों का आधार प्राप्त है। यथा–शुद्ध षड्ज, शुद्ध साधारित व शुद्ध कैशिक मध्यम राग–षड्जग्रामिक हैं। शुद्ध मध्यम, शुद्ध पंचम, शुद्ध कैशिक व शुद्ध षाडव रागों को मध्यम ग्रामिक कहा गया।

महर्षि भरत ने सात ग्राम राग गिनाए हैं व उनके प्रयोग के अवसर भी निर्दिष्ट किए हैं। अंतर स्वरों के प्रयोग से जाति रागों का जन्म भी बताया है। परंतु 'राग' का लक्षण वर्णित नहीं किया है। महर्षि ने ग्राम रागों को जाति से उत्पन्न बताया है।

वृहद्देशी ग्रंथ के रचयिता मतंग मुनि जी ने ग्राम का अर्थ इस प्रकार स्पष्ट किया है– "यह समूहवाची शब्द है। जिस प्रकार कुटुंब में सब मिलकर रहते हैं, उसी प्रकार श्रुति और स्वरों का समूह ग्राम है। जिसमें श्रुतियाँ व्यवस्थित हों और मूर्च्छना, तान, जाति और रागों का आश्रय हो, वह ग्राम है।"

ग्राम रागों को अन्य रागों का जनक भी माना गया है। मतंग ने याष्टिक के मत से ग्राम रागों को भाषा रागों का जनक माना है। यथा–ग्राम रागों से भाषा, भाषा से विभाषा तथा विभाषा से अंतर भाषा रागों का जन्म हुआ। अत: स्पष्ट है कि ग्राम राग जातियों के पश्चात रागों के प्रथम प्रकार थे व जातियों से इनका निकटतम संबंध रहा। सात प्रमुख रागों को विभिन्न गीतियों के अनुसार गाए जाने पर इनकी संख्या 30 हो जाती है।

गीतियों के अनुसार गाए जाने वाले विभिन्न ग्राम राग

1. शुद्धा गीति के अंतर्गत सात ग्राम राग हैं जिनमें से तीन षड्जग्रामिक व चार मध्यमग्रामिक हैं।
2. भिन्ना गीति के अंतर्गत कुल पाँच राग हैं जिनमें से दो षड्जग्रामिक हैं व 3 मध्यमग्रामिक हैं।

Scanned with CamScanner

3. गौड़ी गीति के अंतर्गत तीन ग्रामराग हैं–दो षड्जग्रामिक व एक मध्यमग्रामिक हैं।

4. बेसर गीति के अंतर्गत आठ ग्रामराग हैं उनमें से तीन षड्जग्रामिक, तीन मध्यमग्रामिक व दो द्विग्रामिक हैं।

5. साधारण गीति के अंतर्गत सात ग्राम कहे गए हैं–तीन षड्जग्रामिक, तीन मध्यमग्रामिक व एक द्विग्रामिक हैं।

समानता की दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि किसी भी पद्धति में किसी एक राग को आधार मानकर उसका अंश या छाया अन्य रागों में दिखाई जाती है। ठीक इसी प्रकार ग्राम रागों के लिए भी ऐसा माना जा सकता है कि जिन ग्राम रागों में षड्जग्राम की छाया या इससे समता रखने वाले गुण मिलते थे, उन ग्राम रागों को षड्जग्रामिक कहा गया व जिनमें मध्यमग्राम के गुण दिखाई दिए उन्हें मध्यमग्रामिक माना गया।

ग्राम राग वर्गीकरण सभी पद्धतियों में से प्रमुख पद्धति है। यह भरतकाल से चली आ रही है। 'संगीत रत्नाकर' में पं० शारंगदेव जी ने रागों के प्रमुख दो वर्गों–ग्राम राग और देशी रागों का वर्णन किया है तथा उस समय में प्रचलित पाँच गीतियों–शुद्धा, भिन्ना, गौडी, बेसरा और साधारणी का निरूपण और उनके आधार पर ग्राम रागों का विभाजन भी स्पष्ट किया है।

दशविध राग वर्गीकरण

संगीत में विभिन्न परिवर्तन होने के कारण पंडित शारंगदेव जी ने अपनी रचना 'संगीत रत्नाकर' में राग वर्गीकरण की नई पद्धति को अपनाया। शारंगदेव जी ने रागों के दस प्रकार बताए हैं, जो इस प्रकार हैं– ग्राम राग, राग, उपराग, भाषा, विभाषा, अंतरभाषा, रागांग, भाषांग, उपांग एवं क्रियांग।

शारंगदेव जी ने इसे दशविध राग वर्गीकरण कहा है। उन्होंने इनमें से प्रथम छह को मार्गी संगीत व अंतिम चार को देशी संगीत के अंतर्गत माना।

ग्रामराग, उपराग, राग–पाँच गीतियों के अंतर्गत कुल 30 ग्रामराग हैं। इनकी उत्पत्ति जातियों से हुई है। इनके अतिरिक्त 8 उपरागों की चर्चा की है जिनकी उत्पत्ति भी जातियों से मानी गई है। ग्रामरागों व उपरागों की भाँति रागों की उत्पत्ति भी जातियों से मानी गई है। रागों की संख्या 20 मानी गई।

भाषा, विभाषा, अंतरभाषा–शारंगदेव जी ने मतंग मत से 'भाषा' को ग्रामरागों के आलाप प्रकार यानी ग्रामरागों को गाने के विभिन्न प्रकार कहा है। ग्रामरागाणामेवालापप्रकार भाषावाच्या:। भाषाशब्दोऽत्र प्रकारवाची।

समस्त ग्रामरागों व उपरागों में से इन्होंने 15 को ही भाषा-जनक माना है तथा उनकी कुल 96 भाषाओं का नामोल्लेख किया है। विभाषा तथा अंतरभाषा शब्दों की कोई व्याख्या नहीं मिलती, फिर भी कल्लिनाथ के अनुसार इन्हें भाषा की तरह ग्रामरागों के आलाप प्रकार कहा जा सकता है। विभाषाओं की संख्या शारंगदेव ने 20 कही है।

ग्राम रागों के ऐसे प्रकार जिनका विकास भाषा और विभाषा के बाद हुआ और जो इन दोनों की अपेक्षा ग्रामरागों से और भी ज्यादा दूर थे, वे अंतरभाषा कहलाए। इनकी संख्या चार है।

1. **रागांग**–इन रागों में ग्रामरागों की छाया दिखाई देती है। यानी ग्रामरागों के नियमों के भंग, मिश्रण अथवा उनमें विकार से जो राग उत्पन्न हों, वे रागांग हैं। इनकी कुल संख्या 21 है।
2. **भाषांग**–भाषा रागों की छाया लेकर जिन रागों की उत्पत्ति हुई, वे भाषांग हैं। रत्नाकर के रचनाकार द्वारा 20 भाषांग माने गए हैं।

Scanned with CamScanner

3. **क्रियांग**–जिन रागों से चित्त में करुणा, उत्साह, शोक आदि क्रिया उत्पन्न होती है, वे क्रियांग राग हैं। इनकी कुल संख्या 15 है।

4. **उपांग**–अंगों की छाया का अनुकरण होने से इन रागों को उपांग कहा गया है। इनकी संख्या 30 है।

यदि समानता की दृष्टि से पं० शारंगदेव कृत दशविध राग वर्गीकरण को देखें तो ज्ञात होता है कि उसमें भी ग्राम रागों की छाया दिखने पर रागांग राग तथा भाषा रागों की छाया दिखने पर भाषांग राग कहे गए हैं। वर्तमान समय में भी यदि राग वर्गीकरण की प्रणाली पर दृष्टिपात किया जाए तो ज्ञात होता है कि वर्तमान रागांग पद्धति में भी कुछ प्रमुख रागों का अंग अन्य रागों में दिखाया जाता है जिससे वे एक समूह के राग कहलाते हैं।

शुद्ध, छायालग एवं संकीर्ण राग वर्गीकरण

राग-वर्गीकरण की यह पद्धति प्राचीनकाल, मध्यकाल तथा आधुनिक काल में समान रूप से प्रचलित रही है। उल्लेखनीय है कि शुद्ध, छायालग, संकीर्ण वर्गीकरण पद्धति प्रत्येक काल में एक सिद्धांत रूप में मान्य रही है। इसे वर्गीकरण की स्वतंत्र प्रणाली के रूप में अपनाया नहीं गया। इसलिए इस वर्गीकरण की प्रक्रिया अन्य प्रणालियों से भिन्न है। प्राचीन काल से ही रागों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है–

शुद्ध राग–जिन रागों में किसी और राग की छाया नहीं आती है, वे शुद्ध राग कहलाते हैं। ये राग अन्य रागों से स्वतंत्र होते हैं, इनमें शुद्ध शास्त्रीय नियमों का निर्वाह होता है, जैसे–राग काफी, कल्याण आदि।

शास्त्रकारों ने कहा है कि शास्त्रोक्त गाया जाने वाला गायन तथा रंजन करने वाला गायन ही शुद्ध राग कहलाता है।

छायालग राग–जिन रागों में किसी दूसरे राग की छाया आती है, उन्हें छायालग राग कहते हैं।

संकीर्ण राग–जिन रागों में शुद्ध एवं छायालग रागों का मिश्रण मिलता है, उन्हें संकीर्ण राग कहते हैं। जिस प्रकार छायालग राग में अन्य किसी राग की छाया दिखती है, उसी प्रकार संकीर्ण राग में उसकी छाया दिखती है, जैसे–राग पीलू, मिश्र काफी, मिश्र खमाज आदि। अधिकतर ठुमरियों के लिए जो राग गाए व बजाए जाते हैं, वे संकीर्ण राग कहलाते हैं।

मध्यकाल

राग-रागिनी वर्गीकरण

रागों के इस पारिवारिक वर्गीकरण का सूत्रपात 'नारद मुनि' के मध्ययुगीन ग्रंथ 'संगीत मकरंद' से माना जा सकता है। नारदमुनि के अनुसार हास्य, शृंगार तथा करुण रस स्त्री रागों के लिए; रौद्र, वीर, अद्भुत रस पुरुष रागों के लिए तथा वीभत्स, भयानक तथा शांत रस नपुंसक रागों के लिए प्रयोग करने चाहिए। राग-रागिनी पद्धति में आगे चलकर रागों की संख्या बढ़ जाने के कारण पुत्र व पुत्रवधु वर्गों को भी जोड़ा गया। संगीत मकरंद के रागों के वर्गीकरण में छह प्रमुख राग तथा उनकी स्त्रियों के वर्णन के अतिरिक्त पुरुष राग, स्त्री राग और नपुंसक राग जैसे प्रकार नारद जी ने बताए हैं।

राग वर्गीकरण के ग्रंथों में मुख्य रूप से दो प्रकार का वर्गीकरण मिलता है–

(*i*) विशुद्ध राग वर्गीकरण

(*ii*) मेल और संस्थानों के अंतर्गत राग और उनकी रागिनियों के अतिरिक्त नए वर्ग की आवश्यकता होने पर पुत्र-पुत्रवधु और नपुंसक वर्ग बनाकर रागों का वर्गीकरण किया गया।

Scanned with CamScanner

इस पद्धति में मुख्य रूप से छह राग माने गए और प्रत्येक की छह-छह रागिनियाँ मानी गईं। इस संबंध में भी कई मत हुए, किंतु चार मत मुख्य रूप से प्रचलित हैं–

(*i*) **शिवमत या सोमश्वर मत**–इन्होंने मुख्य छह राग माने और प्रत्येक की छह रागिनियाँ मानी। इनके अतिरिक्त प्रत्येक राग के 8-8 पुत्र और पुत्रवधुएँ मानी।

(*ii*) **कल्लिनाथ मत या कृष्ण मत**–इस मत वालों ने छह राग व 36 रागिनियाँ मानीं पर इनके नामों में भिन्नता है। इन्होंने 8-8 पुत्र और पुत्रवधुएँ मानीं।

(*iii*) **भरत मत**–भरत मत वालों ने मुख्य छह राग माने व प्रत्येक की पाँच रागिनियाँ तथा आठ-आठ पुत्र व पुत्रवधुएँ मानीं।

(*iv*) **हनुमानमत**–इनके छह मुख्य राग भरत मत के समान ही थे, इन्होंने भी प्रत्येक की पाँच रागिनियाँ और आठ-आठ पुत्र माने। इनके पुत्र राग भरत मत से भिन्न थे। इस मत में पुत्रवधुएँ नहीं मानी गईं।

जिस प्रकार राग-रागिनी में कुछ रागों को मान्यता प्रदान कर उन्हें पुरुष रागों की संज्ञा दी गई। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पुरुष रागों की छाया या कुछ समता जिन अन्य रागों में दिखाई दी, उन्हें स्त्री रागों की संज्ञा दी गई व इसी आधार पर पुत्र व पुत्रवधु राग भी बनाए गए।

इनके रागों के नाम हैं–शुद्ध भैरव, हिंडोल, देशकार, श्रीराग, शुद्धनाट और नाटनारायण। इनके नाम और उनकी 39 रागिनियों के नाम और संख्या में अंतर है।

राग-रागिनी पद्धति अब लगभग समाप्त हो गई है। किंतु कुछ प्राचीन विद्वान इस पद्धति के हनुमान मत को मानते हैं।

मेल राग वर्गीकरण

ऐसा माना जाता है कि अमीर खुसरो की मृत्यु के 12 वर्ष बाद दक्षिण के एक विद्वान पंडित विद्यारण्य ने मेल शब्द का प्रयोग किया था, इसलिए माना जाता है कि मेल पद्धति का आरंभ दक्षिण से ही हुआ। पं० विद्यारण्य के अनुसार 50 रागों का वर्गीकरण 15 मेलों में माना गया है।

पंडित रामामात्य के ग्रंथ 'स्वर मेल कला निधि' के अनुसार मेलों की संख्या 20 बताई गई है। पंडित सोमनाथ ने मेलों की कुल संख्या 23 बताई है।

मेल पद्धति का पूर्ण विकास पं० व्यंकटमुखी ने किया। उनके बताए गए 72 मेल आज भी माने जाते हैं। उनके वर्गीकरण के लिए उन्हें केवल 19 मेलों की आवश्यकता थी।

इस वर्गीकरण के अंतर्गत जिन रागों के शुद्ध तथा विकृत स्वरों में समानता थी, उन्हें एक सुनिश्चित वर्ग में रखकर उस वर्ग को मेल की संज्ञा दी गई। मेलों में सर्वप्रसिद्ध राग का नामाधार लेकर मेल का नामकरण किया गया। मध्यकाल में मेल पद्धति की चर्चा सभी ग्रंथकारों ने अपने ग्रंथों में की है। ग्रंथकारों ने मेलों की संख्या भी अलग-अलग मानी है तथा इसे भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा है। मेल के लिए संस्थान, थाट व संस्थिति आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। 16वीं-17वीं शताब्दी से पूर्व उत्तर में इस पद्धति से लिखित ग्रंथ नहीं मिलते। इसके दो कारण हो सकते हैं–प्रथम, राजनीतिक अस्थिरता के कारण इस समय अन्यान्य विद्या की तरह संगीत शास्त्र को भी प्रश्रय मिलना सरल न था। द्वितीय, इस समय राग-रागिनी पद्धति अधिक पनपी तथा राग के मेल के स्थान पर उसकी भावात्मक अभिव्यक्ति की ओर अधिक ध्यान दिया गया एवं राजदरबार

Scanned with CamScanner

में भी रागों की मानुषी या दैवी मूर्ति की कल्पना को प्राथमिकता मिली। इससे संगीतज्ञ व श्रोता दोनों को राग के रूप को समझने के लिए बल मिला। हृदयनारायण देव ने अपनी रचना 'हृदयप्रकाश' में इस प्रकार लिखा है–(1660) 'मेल स्वर समूहः स्याद् राग व्यंजन शक्तिमान।' अर्थात मेल स्वरों का वह समूह है, जिसमें राग उत्पन्न करने की शक्ति होती है।

मेल शब्द का प्रयोग दो अर्थों में होता रहा है। प्रथम अर्थ में रागों के वर्गीकरण का एक नियम मेल या थाट वर्गीकरण है। द्वितीय, तंत्री वाद्यों पर स्वर स्थापन की विशेष प्रक्रिया 'मेलन' या 'ठाठ' कहलाती है।

समानता की दृष्टि से देखें तो ज्ञात होता है कि मेल पद्धति में भी रागांग-राग वर्गीकरण के समान ही कुछ मेलों को प्रमुख मान लिया गया व शुद्ध, विकृत स्वरों की समानता के आधार पर उन्हें भिन्न वर्ग में रखा गया। जिस राग में भी वे स्वर प्रयुक्त हों तो कहा जा सकता है कि अमुक राग अमुक मेल का है।

मेल से समानता रखने वाली थाट पद्धति को आधुनिक ग्रंथकारों ने राग वर्गीकरण की एक प्रमुख पद्धति के रूप में मान्यता दी।

प्राचीनकाल से वर्तमान समय तक सभी राग-वर्गीकरण पद्धतियों का प्रयोजन एक ही रहा कि संगीत में प्रयोग की व्यवस्था तथा रागों के विकासक्रम को व्यवस्थित व सरल रूप दिया जा सके। रागों की संख्या अधिक होने के कारण समस्त रागों का विभाजन दस भागों में किया गया, यथा–ग्रामराग, राग, उपराग, भाषा, विभाषा, अंतरभाषा, रागांग, भाषांग व उपांग। इनमें से प्रथम छह को 'मार्ग संगीत' के अंतर्गत रखा गया व बाद वाले चार को 'देशी राग' कहा गया। देशी संगीत का प्रचलन बढ़ जाने के कारण 'मार्ग संगीत' धीरे-धीरे लुप्त हो गया। देशी रागों का प्रयोग मध्यकाल में लगभग सभी ग्रंथकारों ने अपने ग्रंथों में किया। इसके साथ-साथ अन्य वर्गीकरण पद्धतियाँ भी चलती रहीं। राग-रागिनी पद्धति मध्यकाल की देन है। इस पद्धति में भाव के आधार पर मुख्य राग माने गए व उनसे समता रखनेवाले रागों को स्त्री राग कहा गया और इसी आधार पर अन्य वर्ग भी निर्मित किए। इस पद्धति का प्रयोग मध्यकाल में होता रहा और साथ-साथ 'मेल पद्धति' का विकास हुआ। पं० भातखंडे के समय तक भारतीय संगीत में राग-रागिनी परंपरा का प्रचलन व प्रभाव रहा। पूर्व परंपरा का सुदृढ़ संबल न रहने व नियमों में अव्यवस्था व मतैक्य न रहने के कारण यह व्यवस्था गुणियों में मान्यता प्राप्त न कर सकी व मेल पद्धति का प्रभाव अधिक हावी हो गया। मेल पद्धति को आधार मानते हुए 'थाट राग वर्गीकरण पद्धति' विकसित की गई।

इस प्रकार प्राचीनकाल से यही क्रम चला आ रहा है। जैसे-जैसे रागों की संख्या बढ़ी व पद्धति विशेष के उसे समेटने में असमर्थ होने से, राग-वर्गीकरण की पद्धतियों में भी परिवर्तन होता रहा। प्राचीनकाल से मध्यकाल तक राग-वर्गीकरण पद्धतियों में अधिकाधिक परिवर्तनों के कई कारण हमारे समक्ष हैं, जो इस प्रकार हैं–प्राचीनकाल व मध्यकाल के ग्रंथों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उस समय ग्रंथकारों के स्वर भिन्न-भिन्न थे, स्वरों में भिन्नता होने से ग्राम (स्केल) या सप्तक में भिन्नता आना स्वाभाविक था। उस समय राजनीतिक स्थिति एक-सी नहीं थी, रियासतें बँटी हुई थीं व साधनों की कमी के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान पर संपर्क करना आसान नहीं था। सभी ग्रंथकारों व स्थान विशेष के अपने-अपने राग थे व अपनी-अपनी राग वर्गीकरण पद्धतियाँ।

प्रत्येक काल में विभिन्न विद्वानों ने अपने समय में प्रचलित जाति/ग्रामराग/राग के अनुसार वर्गीकरण किया और सभी वर्गीकरण पद्धतियों में एक तत्व समान रूप से दिखाई देता है कि सभी पद्धतियों में कुछ रागों को

Scanned with CamScanner

प्रमुख माना गया व उनसे समता रखने वाले रागों को एक वर्ग में रखा गया। इसी प्रकार इन रागों को प्रमुख रूप देने के पीछे भी कुछ समान तथ्य प्रतीत होते हैं–

(*i*) परंपरागत शिक्षा के आधार पर

(*ii*) लोकप्रियता के आधार पर

(*iii*) व्यक्तिगत चुनाव के आधार पर

रागों को प्रमुख मानने के पीछे उपर्युक्त कारणों में सर्वप्रथम परंपरागत शिक्षा का स्थान आता है। प्रत्येक परंपरा में कुछ रागों को प्रमुख माना जाता है। जैसे–राग-रागिनी परंपरा में भी कई मत प्रचलित थे व उनमें सभी ने अपने-अपने मुख्य राग माने। इसी प्रकार मेल पद्धति की परंपरा में सभी ग्रंथकारों ने अपने-अपने मुख्य मेल माने। अत: परंपरागत शिक्षा के आधार पर प्रमुख रागों का चयन किया जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक काल में कुछ एक राग अधिक लोकप्रिय हो जाते हैं व अन्य रागों का प्रचार कुछ कम हो जाता है; जैसे–आधुनिक काल में खयाल गायकी व ध्रुपद गायन वालों के रागों को देखें तो उनमें भिन्नता है। कुछ राग ध्रुपद गायकी में अधिक प्रचलित हैं जबकि खयाल गायन में वही राग प्रचार में कुछ कम हैं। इसके अतिरिक्त हम जिस स्थान विशेष से संबंध रखते हैं, उस स्थान विशेष का संगीत हमें अधिक प्रभावित करता है और उस प्रचलित संगीत में जो राग प्रमुख होते हैं उन्हें मूल रागों की संज्ञा दी जाती है। उदाहरणत: पंजाब क्षेत्र के गुरमति संगीत में राग गौड़ी के कई प्रकार प्रचलित हैं जो अन्य कहीं भी देखने को नहीं मिलते। इस प्रकार प्रत्येक काल में उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कुछ रागों को प्रमुख मानने की परंपरा प्राचीनकाल से ही चलती आई है।

पं० लोचन के 'रागतरंगिनी' ग्रंथ में 12 मेल माने गए हैं–भैरवी, गौरी, तोड़ी, केदार, कर्णाट, ईमन, मेघ, सारंग, पूर्वी, धनाश्री, मुखारी और दीपक।

आज राजनीतिक स्थिति में व्यापक परिवर्तन आया है। छोटे-छोटे राज्यों व रियासतों के स्थान पर संपूर्ण सांगीतिक व्यवस्था समान रूप से पूरे देश में प्रचलित है। यद्यपि उसपर क्षेत्रीय प्रभाव की झलक दिखाई देती है परंतु मूल रूप में एक ही व्यवस्था का पालन किया जाता है।

प्राचीनकाल से आधुनिक काल तक समय की आवश्यकता के अनुसार कभी भाव के आधार पर, कभी जाति के आधार पर, कभी समय के आधार पर तथा कभी स्वरूप के आधार पर वर्गीकरण होते रहे। समय बदलने के साथ-साथ वर्गीकरण पद्धतियों की आवश्यकता भी बदलती गई। आधुनिक समय में थाट राग पद्धति प्रचार में है।

आधुनिक काल

1. रागांग वर्गीकरण

जिन रागों में ग्राम रागों की छाया दिखाई दे, उन्हें रागांग कहा जाता है। स्व० नारायण मोरेश्वर ने 30 रागों के अंतर्गत ही समस्त रागों को विभाजित किया।

थाट वर्गीकरण

पं० विष्णु नारायण भारतखंडे 'थाट पद्धति' को उत्तर भारतीय संगीत पद्धति में राग वर्गीकरण के लिए स्वीकार करने वाले व उसे क्रियात्मक संगीत में स्थापित करनेवाले सर्वप्रथम आचार्य हैं। मध्यकाल में प्रचलित मेल

Scanned with CamScanner

वर्गीकरण के आधार पर ही आधुनिक युग में थाट-पद्धति का निर्माण किया गया। यद्यपि पं० अहोबल के समय से ही इसका सैद्धांतिक प्रतिपादन भी किया जाता रहा, परंतु क्रियात्मक संगीत में इन ग्रंथों की अनभिज्ञता के कारण इस पद्धति को स्थान न मिल पाया व राग-रागिनी पद्धति का प्रयोग निरंतर चलता रहा।

दक्षिण की तरह उत्तर भारत में राग-वर्गीकरण के लिए कोई निश्चित पद्धति नहीं थी। पं० भातखंडे जी ने संगीत के क्षेत्र में जब प्रवेश किया तो उन्हें इस कमी का आभास हुआ। उन्होंने महसूस किया कि उत्तर भारत के लिए भी दक्षिण भारत की तरह एक निश्चित एवं सुव्यवस्थित राग-वर्गीकरण की पद्धति होनी चाहिए। उन्होंने पं० व्यंकटमुखी के 72 मेलों से कुल 10 मेलों में रागों के वर्गीकरण की उचित व्यवस्था की। 10 थाट इस प्रकार हैं–

1. बिलावल थाट – स रे ग म॑ प ध नी
2. कल्याण थाट – स रे ग म॑ प ध नी
3. खमाज थाट – स रे ग म प ध नी̲
4. भैरव थाट – स रे̲ ग म प ध̲ नी
5. पूर्वी थाट – स रे̲ ग म॑ प ध̲ नी
6. मारवा थाट – स रे̲ ग म॑ प ध नी
7. काफी थाट – स रे ग̲ म प ध नी̲
8. आसावरी थाट – स रे ग̲ म प ध̲ नी̲
9. भैरवी थाट – स रे̲ ग̲ म प ध̲ नी̲
10. तोड़ी थाट – स रे̲ ग̲ म॑ प ध̲ नी

इस वर्गीकरण में स्वर साम्य की तुलना में स्वरूप साम्य पर अधिक ध्यान रखा गया। तीस रागांगों में मुख्य रागांग हैं–भैरव, भैरवी, बिलावल, कल्याण, खमाज, काफी, पूर्वी, मारवा, तोड़ी, कान्हड़ा, मल्हार, सारंग, बागेश्री, ललित आसावरी, भीमपलासी, पीलू, कामोदा आदि।

यदि ध्यानपूर्वक विचार किया जाए तो स्पष्ट होता है कि थाट पद्धति की कल्पना प्राचीन नहीं है, अपितु मध्यकाल में ही सर्वप्रथम इस पर विचार किया गया है। 14वीं शताब्दी में विद्यारण्य ने सर्वप्रथम मेल पद्धति की चर्चा की है परंतु इसे संगीत पद्धति के सैद्धांतिक रूप में लाने का श्रेय पं० व्यंकटमुखी को जाता है। इन्होंने गणित द्वारा मेलों की अधिकतम संख्या निश्चित की व मेल पद्धति को वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया, जिसका नवीनतम रूप उत्तर भारतीय संगीत में थाट पद्धति के रूप में मान्य है।

थाट से अभिप्राय उस स्वर-समूह से है जिसमें राग उत्पन्न करने की क्षमता हो। एक सप्तक में शुद्ध-विकृत स्वर मिलाकर कुल बारह स्वर होते हैं, इन बारह स्वरों में से ही सात स्वर लेकर उनसे थाट बनाए जाते हैं। थाट राग वर्गीकरण को सुचारु रूप से चलाने के लिए भातखंडे जी ने इस पद्धति के लिए कुछ नियम निर्धारित किए हैं जो निम्नलिखित हैं–

(*i*) थाट सदैव संपूर्ण होना चाहिए अर्थात प्रत्येक थाट में पूरे सात स्वर होने आवश्यक हैं क्योंकि यदि थाट संपूर्ण नहीं होगा तो उससे संपूर्ण राग कैसे उत्पन्न हो सकता है। थाट में लगने वाले स्वर भी क्रमयुक्त होने चाहिए, स्वरों के विकृत रूप उलट-पलट कर प्रयोग किए जा सकते हैं परंतु उनका क्रम स, रे, ग, म, प, ध, नी ही होना चाहिए।

Scanned with CamScanner

(*ii*) थाट में आरोह-अवरोह दोनों का होना आवश्यक नहीं होता, थाट के लिए केवल आरोह की ही आवश्यकता होती है।

(*iii*) थाट में रंजकता का होना आवश्यक नहीं है।

(*iv*) थाट गाया-बजाया नहीं जाता।

(*v*) थाट को पहचानने के लिए, उससे उत्पन्न किसी प्रमुख राग का नाम उस थाट को दे दिया जाता है। अधिकतर वह प्रमुख राग ही उस थाट का आश्रय राग बन जाता है।

उपर्युक्त ये नियम हिंदुस्तानी व कर्नाटकी पद्धति दोनों में समान रूप से प्रयोग किए जाते हैं परंतु इनके अतिरिक्त हिंदुस्तानी पद्धति में कुछ और भी नियम माने जाते हैं जो इस प्रकार हैं–

(*vi*) पूर्वांग के प्रत्येक स्वर का मध्यम या पंचम संवादी स्वर उत्तरांग में अवश्य होना चाहिए।

(*vii*) किसी थाट में स्वर के दो रूप एक साथ प्रयोग नहीं किए जा सकते।

उत्तर भारतीय संगीत में मेल या थाट में किसी स्वर के दो रूप एक साथ लेना वर्जित है तथा दक्षिण में ऐसा नहीं है। यही कारण है कि दक्षिण भारतीय संगीत में मेलों की संख्या गणित द्वारा 72 निर्धारित की गई है, तथा हिंदुस्तानी संगीत में मेलों की संख्या अधिक-से-अधिक 32 बन सकती है।

एक स्थान में 12 स्वर– स <u>रे</u> रे <u>ग</u> ग म मं प <u>ध</u> ध <u>नी</u> नी हैं। इन स्वरों में यदि तीव्र मध्यम हटाकर तार सं जोड़ दिया जाए तो स <u>रे</u> रे <u>ग</u> ग म प <u>ध</u> ध <u>नी</u> नी सं से स्वर समूह हमारे सामने आता है। अब इसे दो भागों में विभक्त करने से प्रत्येक भाग में 6-6 स्वर आएँगे।

पूर्व मेलार्ध– स <u>रे</u> रे <u>ग</u> ग म

उत्तर मेलार्ध–प <u>ध</u> ध <u>नी</u> नी सं

अब प्रत्येक मेलार्ध से ऐसे स्वर समूहों की रचना करेंगे कि प्रत्येक स्वर समूह में चार स्वर क्रम से हों, क्योंकि यह थाट का प्रमुख नियम है।

	पूर्व मेलार्ध	उत्तर मेलार्ध
1.	स <u>रे</u> <u>ग</u> म	प <u>ध</u> <u>नी</u> सं
2.	स <u>रे</u> ग म	प <u>ध</u> नी सं
3.	स रे <u>ग</u> म	प ध <u>नी</u> सं
4.	स रे ग म	प ध नी सं

इस प्रकार मेलार्ध व उत्तर मेलार्ध को क्रमशः बारी-बारी जोड़ने पर 4×4=16 थाट बनेंगे। इन थाटों में शुद्ध मध्यम का प्रयोग किया गया है, इसी प्रकार अब तीव्र मध्यम को रखने से पुनः 4×4=16 थाट प्राप्त होते होंगे। भातखंडे जी ने व्यंकटमुखी के 72 मेलों से पहले उन चालीस मेलों को अलग किया जिनमें एक स्वर के दो रूप थे। शेष बचे 32 मेलों में नियम के अनुसार उन मेलों का निराकरण किया, जिनमें कोई-न-कोई स्वर संवादहीन था। उन 20 मेलों को हटाने पर 12 मेल शेष रह जाते हैं। उन 12 मेलों में से दो मेल ऐसे हैं जिनमें हिंदुस्तानी पद्धति के एक नियमानुसार तीव्र मध्यम के साथ शुद्ध निषाद का प्रयोग नहीं होता अथवा मं नी के साथ कोमल ऋषभ अथवा तीव्र गांधार नहीं है। अतः इन दो मेलों का भी निराकरण किया।

Scanned with CamScanner

इस प्रकार इन दो मेलों को निकालने के बाद शेष वही दस मेल रह जाते हैं जो आज हिंदुस्तानी संगीत में दस थाटों के रूप में मान्य हैं। इन्हीं दस मेलों के नामों में कुछ परिवर्तन करके भातखंडे जी ने हिंदुस्तानी संगीत में प्रस्तुत किया।

भातखंडे जी के दस थाटों को यदि संवाद की दृष्टि से देखा जाए तो उनके तीन वर्ग बनाए जा सकते हैं–

1. पंचम संवादी थाट
2. मध्यम संवादी थाट
3. पंचम-मध्यम संवादी अथवा मिश्र संवादी थाट

पंचम संवादी थाट में पूर्वांग के प्रत्येक स्वर का उत्तरांग के किसी स्वर के साथ सीधा पंचम संवादी होता है। इस वर्ग में बिलावल, काफी, भैरव तथा भैरवी आते हैं।

मध्यम संवादी थाटों में पूर्वांग के प्रत्येक स्वर का उत्तरांग के स्वर के साथ मध्यम संवादी होता है। इस वर्ग में खमाज व आसावरी आते हैं।

मिश्र संवादी थाटों में पूर्वांग के प्रत्येक स्वर का उत्तरांग के स्वर के साथ किसी के साथ पंचम तथा किसी के साथ मध्यम संवादी होता है। इस वर्ग में तोड़ी, पूर्वी, मारवा व यमन आते हैं।

थाट पद्धति: अपवाद व सीमाएँ

पं० भातखंडे ने भारतीय संगीत के आधुनिक कालीन स्वरूप के प्रारंभिक स्थिरीकरण के लिए दस थाट पद्धति की जो योजना बनाई, वह सुंदर व उपयोगी है। इसमें थाट के स्वरों द्वारा स्वर साम्य रखने का प्रयत्न किया गया है। परंतु आज रागों का विकासक्रम बढ़ने के कारण दस थाटों का क्षेत्र कुछ कम व अनुपयुक्त प्रतीत होने लगा है।

पं० ओंकारनाथ ठाकुर के अनुसार 'थाट' की व्यवस्था तो वीणा के लिए की गई थी। राग वादन के सौकर्य के लिए राग की स्वरावली के अनुसार पर्दों को खिसकाने की जो क्रिया की जाती है, उसे भी थाट मिलाना कहते हैं। वादन-विधि के प्रसंग में इस शब्द का केवल एक स्थूल-स्वरावली से तात्पर्य था, किंतु राग वर्गीकरण में इसके साथ जनक-जन्य-भाव का अर्थ भी संबद्ध हो गया, यद्यपि इसका स्वरूप स्थूल-स्वरावली-विशेष ही बना रहा।

इसी प्रसंग में के० वासुदेव शास्त्री ने थाट पद्धति की अपूर्णता की ओर ध्यान आकृष्ट किया है–

मेल/थाट पद्धति की इस अपूर्णता को देखते हुए इस पर विचार किया जाना आवश्यक है व रागों के लिए कोई उचित राग-वर्गीकरण पद्धति स्थापित करना अनिवार्य प्रतीत होता है। आज थाट-राग पद्धति में स्थान-स्थान पर अपवाद देखने को मिलते हैं। इन्हें भी निम्न वर्गों में रखा जा सकता है–

1. **स्वर संबंधी अपवाद**–इस श्रेणी में कई प्रकार के अपवाद हमारे सामने आते हैं जो इस प्रकार हैं–

   जनक थाटों में एक समय में केवल सात स्वरों का प्रयोग मान्य है। इसके परिणामस्वरूप जन्य रागों में अनिवार्य रूप से प्रयुक्त होने वाले कई ऐसे स्वर लगते हैं, जिन्हें जनक थाटों में कोई स्थान प्राप्त नहीं होता। जो स्वर मूल रूप से थाट में नहीं है, वह जन्य रागों में कहाँ से, किस नियम से आ सकते हैं? जैसे कल्याण थाट के जन्य रागों में केदार, कामोद, हमीर, गौड़सारंग इत्यादि का समावेश माना है। इन सभी में शुद्ध मध्यम का बहुल प्रयोग पाया जाता है तथा तीव्र मध्यम अल्प मात्रा में प्रयुक्त होता है।

Scanned with CamScanner

जिस कल्याण थाट में शुद्ध मध्यम का कहीं नाम ही नहीं है तो उसके जन्य रागों में ये स्वर प्रयोग करना यथोचित नहीं लगता। इसी प्रकार खमाज थाट में शुद्ध निषाद का स्थान नहीं है परंतु इसके जन्य रागों, यथा–खमाज, देस, तिलक, कामोद आदि में दोनों निषादों का प्रयोग किया जाता है। यही दोष काफी थाट-जन्य रागों में भी दिखाई देता है।

बिलावल थाट के जन्य राग अल्हैया बिलावल का आज बहुत प्रचार है और उसमें दो निषाद का प्रयोग अनिवार्य है। बिलावल के प्रायः अन्य सभी प्रकारों में भी शुद्ध निषाद के साथ-साथ कोमल निषाद का न्यूनाधिक प्रयोग मिलता है। किंतु बिलावल थाट में कोमल निषाद को कोई स्थान नहीं है।

दस थाटों के नाम जिन रागों पर रखे गए हैं उनमें से 'मारवा थाट' नाम उचित नहीं लगता, क्योंकि थाट संपूर्ण होता है और मारवा राग में पंचम वर्जित है। इसीलिए मारवा नाम औचित्य सिद्ध नहीं होता। संभवतः मारवा अधिक प्रसिद्ध था इसीलिए इस थाट का नाम मारवा रखा गया।

2. **जाति संबंधी अपवाद (औड़वषाड़वादि जातियाँ)**–पं० भातखंडे के नियमानुसार थाट के सप्त स्वरों में से किसी एक का त्याग करके षाडव और किन्हीं दो का त्याग करके औढ़व आदि जातियों के राग रूप बनाए जा सकते हैं, किंतु थाट के अतिरिक्त कोई नया स्वर जन्य रागों में समाविष्ट करने का कोई नियम नहीं है। उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि जिन रागों में थाट में समाविष्ट स्वरों के अतिरिक्त जिन-जिन अन्य स्वरों का प्रयोग विहित है, उनके थाट के नियमांतर्गत कोई विधि नहीं है। यदि यह कहा जाए कि थाट में जो स्वर नहीं है, वह यदि जन्य रागों में है तो उसे आगंतुक स्वर के रूप में समाविष्ट कर लिया जाए, तब ऐसी अवस्था में थाट की नियम-व्यवस्था कैसी रहेगी? अर्थात यदि किसी भी थाट में कोई भी अन्य स्वर समाविष्ट करने की छूट हो तो फिर पृथक-पृथक थाटों में अस्तित्व का नियमन कैसा रहेगा? उदाहरण के लिए बिलावल में तीव्र मध्यम का समावेश करने से कल्याण थाट अथवा कल्याण में शुद्ध मध्यम का ग्रहण करके बिलावल थाट, तद्वत पूर्वी में शुद्ध मध्यम का ग्रहण करने से भैरव थाट और भैरव में तीव्र मध्यम का समावेश करने से पूर्वी थाट, उसी प्रकार खमाज में शुद्ध निषाद जोड़ देने से बिलावल और बिलावल में कोमल निषाद जोड़ने से खमाज थाट का निर्माण होने लगेगा। ऐसी अवस्था में थाटों के पृथक-पृथक स्वरूप का नियामक कौन-सा तत्व रहेगा।

3. **नवीन रागों को सम्मिश्रित करने संबंधी अपवाद**–ललित कलाएँ परिवर्तनशील होती हैं अर्थात वह विकसित होती रहती हैं। राग संगीत भी इन्हीं ललित कलाओं का एक मुख्य अंग है। समय के साथ-साथ नित नवीन रागों का निर्माण होता रहता है। इन नवीन रागों के लिए राग-वर्गीकरण पद्धति में गुंजाइश होनी चाहिए, तभी किसी राग-वर्गीकरण पद्धति में कम-से-कम अपवाद हो सकेंगे। आधुनिक थाट राग पद्धति में नवीन रागों के लिए स्थान न होने से अपवादों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है जिसमें से कुछ उदाहरणस्वरूप यहाँ दिए जा रहे हैं–

नवीन रागों को किन थाटों में रखा जाए यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। उदाहरणार्थ–मधुवंती, जोगकौंस, पटदीप आदि अनेक राग हैं जिनके थाट निश्चित नहीं हैं। राग स्वरूप और थाट में आने वाले आरोह-अवरोह का केवल स्वरों के प्रयोग मात्र से संबंध है। बिलावल थाट में आने वाले सभी रागों का इस जन्य राग से सीधा संबंध भी नहीं हो पाता। इसी कारण कई विद्वान रागांग पद्धति से राग वर्गीकरण करते हैं। रागांग पद्धति की सीमा मेल पद्धति से कुछ विस्तृत है। उदाहरणार्थ–भैरव का चलन या मुख्य अंग 'ग म ध़ ध़ प, ग म

Scanned with CamScanner

रे रे स' है तथा इससे उत्पन्न अन्य रागों में यह स्वरावलि या अंग, अंश में भी आ जाए तो उसे भैरवांग मानना उचित है और चलन के अनुसार समधर्मी राग एकत्र हो जाएँ तो उन्हें सीखने में भी सुविधा होगी। उदाहरण के लिए भैरव रागांग में नट-भैरव, अहीर-भैरव, शिवमल भैरव आदि का समावेश होगा। इसी प्रकार तोड़ी रागांग की मुख्य पकड़ 'रे ग रे स' है तो यह स्वरसंगति तोड़ी के सभी प्रकारों में दिखाई देती है। राग-प्रयोज्य 'स्थायों' (रागवाचक स्वर समूहों) का ज्ञान उन्हें एक राग की विभिन्न बंदिशों के अभ्यास से होता था। उनके हृदय में राग के संस्कार बद्धमूल होते थे, ठाठ के नहीं।

उपर्युक्त विवेचना से ज्ञात होता है कि आज थाट राग वर्गीकरण में कई अपवाद उत्पन्न हो गए हैं, जिसके कारण पद्धति विशेष रागों के विकास को समेटने में असमर्थ प्रतीत होती है। अत: समय की माँग को देखते हुए थाट पद्धति के स्थान पर रागांग पद्धति को प्रयोग में लाकर इस समस्या का समाधान किया जा सकता है।

अभ्यास-प्रश्न

1. रागों के वर्गीकरण से आप क्या समझते हैं?
   (सी०बी०एस०ई० 2014, 2017, 2018, 2019) **(उत्तर:** *देखें पृष्ठ 57*)
2. पं० शारंगदेव जी ने रागों को किन प्रमुख वर्गों में विभाजित किया है? **(उत्तर:** *देखें पृष्ठ 58*)
3. दशविध राग वर्गीकरण क्या है? **(उत्तर:** *देखें पृष्ठ 58-59*)
4. राग-रागिनी वर्गीकरण में कौन-से मत मुख्य रूप से प्रचलित हैं? **(उत्तर:** *देखें पृष्ठ 59-60*)
5. राग-रागिनी वर्गीकरण की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए। **(उत्तर:** *देखें पृष्ठ 59-60*)
6. थाट राग वर्गीकरण करने का श्रेय किस महान विभूति को है? लिखिए। **(उत्तर:** *देखें पृष्ठ 62-63*)
7. शुद्ध, छायालग और संकीर्ण रागों में क्या अंतर है? **(उत्तर:** *देखें पृष्ठ 59*)
8. रागांग वर्गीकरण का श्रेय किसको दिया जाता है? **(उत्तर:** *देखें पृष्ठ 62*)
9. 'संगीत मकरंद' में राग-रागिनी वर्गीकरण के कितने मत उल्लेखनीय हैं? **(उत्तर:** *देखें पृष्ठ 59-60*)
10. मेल राग वर्गीकरण से आप क्या समझते हैं? **(उत्तर:** *देखें पृष्ठ 60-62*)
11. थाट पद्धति के अपवाद व सीमाएँ लिखिए। **(उत्तर:** *देखें पृष्ठ 65-67*)

❑❑❑

Scanned with CamScanner

7 रागों का समय सिद्धांत

हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत में समयानुसार गायन प्रस्तुत करने की पद्धति है तथा उत्तर भारतीय संगीत-पद्धति में रागों के गायन-वादन के विषय में समय का सिद्धांत प्राचीनकाल से ही चला आ रहा है, जिसे हमारे प्राचीन संगीत विशारदों ने दो भागों में विभाजित किया है। प्रथम भाग दिन के बारह बजे से रात्रि के बारह बजे तक और दूसरा रात्रि के बारह बजे से दिन के बारह बजे तक माना गया है। इसमें प्रथम भाग को पूर्व भाग और दूसरे को उत्तर भाग कहा जाता है। इन भागों में जिन रागों का प्रयोग होता है, उन्हें सांगीतिक भाषा में 'पूर्वांगवादी राग' और 'उत्तरांगवादी राग' भी कहते हैं। जिन रागों का वादी स्वर जब सप्तक के पूर्वांग अर्थात 'सा, रे, ग, म' इन स्वरों में से होता है, तो वे 'पूर्वांगवादी राग' कहे जाते हैं तथा जिन रागों का वादी स्वर सप्तक के उत्तरांग अर्थात 'प, ध, नि, सां', इन स्वरों में से होता है, वे 'उत्तरांगवादी राग' कहे जाते हैं। स्वर और समय के अनुसार उत्तर भारतीय रागों के तीन वर्ग मानकर कोमल-तीव्र (विकृत) स्वरों के अनुसार भी उनका विभाजन किया गया है–

1. कोमल 'रे' और कोमल 'ध' वाले राग
2. शुद्ध 'रे' और शुद्ध 'ध' वाले राग तथा
3. कोमल 'ग' और कोमल 'नि' वाले राग

इस आधार पर संपूर्ण राग-रागिनियों की रचना की गई है। उदाहरण के तौर पर, ब्रह्म मुहूर्त पर ईश्वर-आराधना से दिन प्रारंभ होता है, इसलिए राग भैरव में गाते हैं 'जागो मोहन प्यारे'। पूजा-अर्चना समाप्त हो जाने के बाद दिन शुरू होता है। कामकाज से जीवन आरंभ होने लगता है, तब तोड़ी राग में गाते हैं 'लंगर कांकरिया जिन मारों'। सूरज माथे पर चढ़ने लगा है। अलसाई हुई दोपहर की दहलीज पर शरीर का थकना स्वाभाविक है। तब राग-सारंग में गाया जाता है–'अब मोरी बात मानले पियरवा'। पैरों के पास रुकी हुई परछाईं अब शरीर से दूर होने लगती है, रुके-थके हाथ फिर से कामकाज में मग्न हो जाते हैं।

संध्या का आभास होने लगता है, तब राग मुलतानी में गाया जाता है 'आँगन में नंद लाल, ठुमक-ठुमक चलत चाल'। थका-हारा सूरज पश्चिम की ओर झुकने लगता है। तब मन की उदासी में होंठों पर राग मारवा के शब्द गुनगुनाने लगते हैं। इसमें 'पिया मोरे तुमसे मिलन का आस करूँ मैं' गाया जाता है।

राग का रंग चढ़ने लगता है, मन की चंचलता, मिलन की आकांक्षाओं में झूलता मन पिया के लिए राग बागेश्री में गाता है 'अपनी गरज पकड़ लीनी बैंया मोरी'। गहराती श्यामल रात अकेलेपन से छुटकारा पाने के लिए विरह-व्याकुल मन राग मालकौंस में गाता है 'याद आवत मोहे पिया की बतियाँ, कैसे गुजारूँ सखी उन बिन रतियाँ'।

मध्यरात्रि का समय हो गया है। भौतिक सुख-दुख की अनुभूतियाँ लेने के बाद भी मन की रिक्तता पूर्ण नहीं होती। तब इस सांसारिक बंधनों के पार उस ईश्वर के दर्शन की अभिलाषा मन में जागृत होती है और तब

Scanned with CamScanner

दरबारी कान्हड़ा में गाया जाता है 'प्रथम ज्योति ज्वाला, शरण तेरी ये माँ'। रात्रि का अंतिम प्रहर ईश्वर तक पहुँचने के लिए अधीर मन राग अड़ाना में गाता है 'अब कैसे घर जाऊँ, श्याम मोहे रोकत-रोकत'।

इसी चक्र के अनुसार रागों का चलन होता है। वैसे अनेक गायक-वादक अपनी इच्छानुसार इन रागों के क्रम में परिवर्तन करके गाते-बजाते हैं तथा अन्य रागों का समावेश भी इच्छानुसार कर लेते हैं, किंतु गायक या वादक को समय का ध्यान रखकर ही गायन-वादन करना चाहिए अन्यथा श्रोताओं पर उसका अच्छा प्रभाव नहीं होता है और न राग से रसोत्पत्ति संभव है।

भारतीय संगीत में रागों के गाने व बजाने का एक निश्चित समय निर्धारित किया गया है। यह सत्य है कि रागों का जो निश्चित समय है, उस समय पर गाने व बजाने से अलग ही आनंद की अनुभूति होती है। भारतीय संगीत में चार सिद्धांतों के आधार पर रागों का समय निश्चित किया गया है, जैसे–

1. अध्वदर्शक स्वर
2. वादी-संवादी स्वर
3. पूर्वांग-उत्तरांग
4. रे ध, रे ध व ग नी

स्वर-संयोग से रागों का समय

इस वर्ग में राग में किस प्रकार के स्वर लग रहे हैं, इस पर रागों का समय निर्धारित किया जाता है, जैसे–कोमल रे और ध वाले रागों का समय, शुद्ध रे और ध वाले रागों का समय तथा कोमल ग और नी वाले रागों का समय। रे ध कोमल, रे ध शुद्ध तथा ग नी कोमल वाले रागों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

1. कोमल रे ध वाले राग अथवा संधि प्रकाश राग

जिन रागों में रे और ध कोमल लगते हैं, उन्हें संधि प्रकाश राग कहा जाता है। संधि प्रकाश का अर्थ है–वह समय जब दिन और रात की संधि अर्थात मिलन होता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि सूर्योदय तथा सूर्यास्त के बीच का समय संधि प्रकाश कहलाता है। संधि प्रकाश का समय सुबह 4-7 एवं सायं 4-7 का माना जाता है। इस समय में पूर्वी मारवा और भैरव थाट के सभी राग गाए जाते हैं, जैसे–भैरव कालिंगडा, रामकली, ललित, जोगिया, श्री मारवा, पूर्वी, पूरिया, धनाश्री आदि। मारवा और पूरिया दोनों ही संधि प्रकाश राग हैं। इनमें केवल रिषभ ही कोमल है धैवत नहीं, जैसा कि हमारे विद्वानों ने संधि प्रकाश रागों का लक्षण माना है।

प्रत्येक संधि प्रकाश राग में रिषभ तो कोमल होता ही है, साथ ही गांधार भी सदा शुद्ध होता है। अतः रे ध कोमल के बजाय रे कोमल व ग शुद्ध संधि प्रकाश रागों की विशेषता कही जाए तो अपेक्षाकृत अधिक तर्कयुक्त होगा।

अध्वदर्शक स्वर के अंतर्गत प्रातःकालीन और संध्याकालीन संधि प्रकाश रागों में म स्वर बहुत महत्वपूर्ण है। प्रातःकालीन संधि प्रकाश रागों में शुद्ध म एवं सायंकालीन संधि प्रकाश रागों में तीव्र म प्रधान होता है।

2. शुद्ध रे ध वाले राग

रे ध शुद्ध रागों के वर्ग में खमाज, बिलावल और कल्याण थाट के राग आते हैं। रे ध शुद्ध रागों के वर्ग में गांधार हमेशा शुद्ध ही लगेगा, अन्यथा कोमल ग लगाने पर वह ग नी कोमल राग वर्ग में आ जाएगा। अतः इसे रे ध शुद्ध न कहकर रे ग शुद्ध वाले राग कहना उचित होगा। इस वर्ग के रागों का समय सुबह 7 से 10 तथा सायं 7 से रात्रि 10 बजे तक माना गया है।

Scanned with CamScanner

शुद्ध मध्यम का स्थान रे ग शुद्ध रागों के वर्ग में कुछ कम नहीं है। सुबह 7-10 बजे तक गाए जानेवाले रागों में शुद्ध मध्यम तथा 7-10 रात्रि तक गाए जानेवाले रागों में तीव्र मध्यम की प्रधानता मानी गई है, जैसे–देशकार, बिलावल और उसके सभी प्रकार, गौड सारंग आदि सुबह गाए जाते हैं तथा मारू बिहाग, कल्याण तथा उसके प्रकार रात्रि में गाए जाते हैं। किंतु इस नियम के कुछ अपवाद भी हैं, जैसे–हिंडोल में तीव्र मध्यम लगता है किंतु वह सुबह को गाया जाता है तथा ऐसे ही दुर्गा, तिलककामोद, देश खमाज आदि में शुद्ध मध्यम प्रयोग किया जाता है, किंतु ये रात्रि में गाए जाते हैं।

3. कोमल ग नी वाले राग

अन्य वर्गों के रागों के पश्चात ग नी कोमल रागों का समय आता है। इनका समय सुबह 10 बजे से शाम के 4 बजे तक तथा रात के 10 बजे से सुबह के 4 बजे तक माना गया है। कुछ विद्वान इनका समय रात्रि 12-4 बजे मानते हैं, किंतु इस वर्ग के रागों की संख्या अधिक होने के कारण 10-4 का समय अधिक उपयुक्त है।

इस वर्ग में चार थाटों के राग आते हैं। काफी, भैरवी, आसावरी एवं तोड़ी। इसलिए इस वर्ग की अवधि अन्य वर्ग के रागों से बड़ी होनी चाहिए। दूसरा कारण यह है कि इस वर्ग के राग 12 बजे से पहले ही आरंभ हो जाते हैं, अत: इस वर्ग के रागों का समय 10 बजे से ही मानना उचित होगा। पटदीप राग इस नियम का अपवाद है क्योंकि यह दिन के चौथे प्रहर में गाया जाता है। इसमें ग तो कोमल है, किंतु नि शुद्ध। ऐसे ही मधुवन्ती भी इस नियम का अपवाद है, इसमें में नी शुद्ध तथा ग कोमल है। अत: ग नी कोमल वाले रागों के वर्ग को यदि केवल कोमल ग वाला वर्ग कहा जाए, तो अधिक उपयुक्त होगा।

अध्वदर्शक अथवा मध्यम स्वर से समय निर्धारण

मध्यम स्वर को अध्वदर्शक स्वर कहा गया है। इस स्वर का भारतीय संगीत में बहुत महत्व है। मध्यम स्वर के द्वारा हमें राग का समय–दिन है अथवा रात्रि; यह पता चल जाता है। 24 घंटे के समय को दो बराबर भागों में बाँटा गया है। पहला भाग जिसे पूर्वार्ध कहा गया है, दिन के 12 बजे से रात्रि के 12 बजे तक होता है। दूसरा जिसे उत्तरार्ध कहा गया है, रात्रि के 12 बजे से दिन के 12 बजे तक होता है। पूर्वार्ध में तीव्र म तथा उत्तरार्ध में शुद्ध म की प्रधानता पाई जाती है।

कुछ रागों से तो उपर्युक्त विधि से रागों का समय पता चलता है, किंतु कुछ राग उपर्युक्त विधि का खंडन भी करते हैं, जैसे–बसंत राग में दोनों म प्रयोग होते हैं, किंतु तीव्र म की प्रधानता है। कुछ लोग तो शुद्ध म लगाते ही नहीं हैं, किंतु यह रात्रि के अंतिम प्रहर में गाया जाता है जो उत्तरार्ध में आता है।

सही मायने में उपर्युक्त नियम का पालन केवल संधि प्रकाश रागों में होता है। प्रात:कालीन संधि प्रकाश रागों में शुद्ध मध्यम तथा सायंकालीन संधि प्रकाश रागों में तीव्र म की प्रधानता होती है।

वादी-संवादी स्वरों से समय निर्धारण

वादी और संवादी स्वर राग में लगनेवाले महत्वपूर्ण स्वर हैं। इन स्वरों से भी रागों का समय निश्चित होता है। जिन रागों में वादी स्वर स रे ग म प में से कोई एक होता है, उसे पूर्वांगवादी राग कहते हैं, क्योंकि ये सप्तक के पूर्वांग में हैं। यदि सप्तक के उत्तरांग में से अर्थात म प ध नी सं में से कोई एक होता है, तो वह उत्तरांगवादी राग कहलाता है। कल्याण, भूपाली, बिहाग में वादी स्वर पूर्वांग में है तो इन्हें पूर्वांगवादी राग कहेंगे

Scanned with CamScanner

तथा इनका गायन समय भी पूर्वार्ध अर्थात दिन के 12 बजे से रात्रि के 12 बजे तक होगा। इसी प्रकार जिन रागों में सप्तक के उत्तरांग से वादी स्वर लिया गया है, तो वे उत्तरांगवादी राग कहलाते हैं, जैसे–अलहैया बिलावल, देशकार, भैरव आदि रागों का वादी स्वर, सप्तक के उत्तरांग से लिया गया है तो ये उत्तरांगवादी राग कहलाते हैं तथा इनका गायन समय उत्तरार्ध अर्थात रात्रि के 12 बजे से दिन के 12 बजे तक होता है। वादी स्वर न केवल समय को बताता है बल्कि स्वरूप एवं चलन भी वादी स्वर से ज्ञात होता है। जैसे यदि किन्हीं दो रागों के स्वर समान हैं, किंतु वादी स्वर भिन्न हैं तो राग का स्वरूप, चलन व समय भी अलग हो जाते हैं। जैसे– देशकार और भूपाली रागों के स्वर समान हैं किंतु दोनों का वादी स्वर भिन्न है। भूपाली का ग वादी तथा देशकार का ध वादी है। फिर भी दोनों का चलन व समय भिन्न है।

पूर्वांग-उत्तरांग

जिन रागों का पूर्वांग अधिक प्रधान है, वे पूर्वार्ध अर्थात दिन के 12 बजे से रात्रि के 12 बजे तक की अवधि में और जिन रागों का उत्तरांग अधिक प्रधान है, वे रात्रि के 12 बजे से दिन के 12 बजे तक की अवधि में गाए-बजाए जाते हैं। उदाहरण के लिए भीमपलासी, केदार, दरबारी कान्हडा व केदार पूर्वांग प्रधान राग हैं जो दिन के पूर्वार्ध में तथा बहार हिंडोल, सोहनी व बसंत उत्तरांग प्रधान राग हैं जो कि दिन के उत्तरार्ध में गाए-बजाए जाते हैं। हर सिद्धांत के कुछ अपवाद अवश्य होते हैं। इस सिद्धांत के भी अपवाद स्वरूप राग है – जैसे हमीर। यह राग स्वरूप की दृष्टि से उत्तरांग प्रधान है, किंतु दिन के पूर्वार्ध में गाया-बजाया जाता है।

ऋतुओं के अनुसार समय-निर्धारण

कुछ राग ऐसे होते हैं कि ऋतुओं के अनुसार गाए-बजाए जाने पर ही आनंद प्रदान करते हैं। ऋतुकालीन राग होने के कारण उन्हें किसी भी समय गाया जा सकता है, जैसे–वर्षा ऋतु में मेघ राग व बसंत ऋतु में बसंत राग गाया-बजाया जाता है।

गीत के आधार पर रागों का समय-निर्धारण

रागों को शब्दों के आधार पर भी समय निश्चित करके गाया जाता है, जैसे–जिन रागों में सुबह-सवेरे होने वाले कार्य, जैसे–सोकर उठना, पूजा करना आदि शब्द आते हैं, उन्हें प्रातःकाल गाया जाता है। यदि सायंकालीन शब्द आते हैं, तो वे राग सायंकाल में ही गाए जाते हैं।

अभ्यास-प्रश्न

1. रागों के समय सिद्धांत को विस्तारपूर्वक समझाइए। **(सी०बी०एस०ई० 2008-13, 18)**
   (उत्तर: देखें पृष्ठ 68-69)
2. आप संधि प्रकाश रागों के बारे में क्या जानते हैं? **(उत्तर: देखें पृष्ठ 69)**
3. पूर्वांगवादी और उत्तरांगवादी रागों के बारे में विस्तार से बताइए। **(उत्तर: देखें पृष्ठ 71)**
4. रागों के समय-निर्धारण में विद्वानों के विभिन्न मत क्या हैं? बताइए। **(उत्तर: देखें पृष्ठ 68-69)**

❑❑❑

Scanned with CamScanner

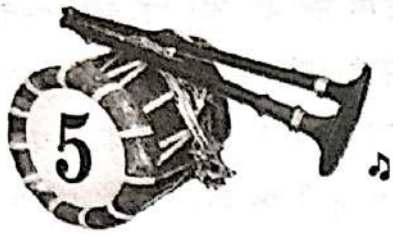

ग्रंथ-परिचय

संगीत रत्नाकर

संगीत रत्नाकर ग्रंथ 13वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पं० शारंगदेव द्वारा रचा गया। यह भारत के सबसे महत्वपूर्ण संगीतशास्त्रीय ग्रंथों में से है जो हिंदुस्तानी (उत्तर भारतीय) संगीत तथा कर्नाटक (दक्षिण भारतीय) संगीत दोनों द्वारा समादृत है। इसे 'सप्ताध्यायी' भी कहते हैं क्योंकि इसमें सात अध्याय हैं। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के बाद संगीत रत्नाकर ऐतिहासिक दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है।

शारंगदेव यादव राजा 'सिंहण' के राजदरबारी थे जिनकी राजधानी दौलताबाद के निकट देवगिरि थी। इस ग्रंथ के कई भाष्य हुए हैं जिनमें सिंहभूपाल (1330 ई०) द्वारा रचित 'संगीत सुधाकर' तथा कल्लिनाथ (1430 ई०) द्वारा रचित 'कलानिधि' प्रमुख हैं।

संगीत रत्नाकर में कई तालों का उल्लेख है। इस ग्रंथ से पता चलता है कि प्राचीन भारतीय पारंपरिक संगीत में अब बदलाव आने शुरू हो चुके थे व संगीत पहले से उदार होने लगा था। उस समय प्रचलित संगीत के स्वरूप को 'प्रबंध' कहा जाने लगा। प्रबंध को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया–निबद्ध प्रबंध व अनिबद्ध प्रबंध। निबद्ध प्रबंध को ताल की परिधि में रहकर गाया जाता था जबकि अनिबद्ध प्रबंध मुक्त रूप में गाया जाता था। प्रबंध का एक अच्छा उदाहरण है–जयदेव रचित 'गीतगोविंद'।

दक्षिणी और उत्तरी संगीत विद्वान इस ग्रंथ को संगीत का आधार ग्रंथ मानते हैं। इसमें स्वर श्रुति, नाद ग्राम, मूर्च्छना जाति आदि की विवेचना भली-भाँति की गई है। इसमें गायन, वादन तथा नृत्य तीनों का विवरण है। इसमें सात अध्याय हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1. स्वरगताध्याय

इसमें सात शुद्ध तथा विकृत स्वरों का परिचय तथा शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, बेसरा, साधारणी आदि गायन शैलियों के लक्षणों का वर्णन किया गया है। इसमें नाद स्वरूप, नादोत्पत्ति तथा इसके भेद, सारणा चतुष्टयी, ग्राम, मूर्च्छना, तान निरूपण, स्वर और जाति, साधारण वर्ण, अलंकार तथा जातियों का विस्तृत वर्णन दिया गया है।

2. रागविवेकाध्याय

इस अध्याय में ग्राम राग और उनके विभाग, उपराग, भाषा, विभाषा और अंतर्भाषा, राग, देशी राग, जैसे शुद्ध कौशिक, पंचम गौड़, गौड़ कौशिक और प्रसिद्ध रागों का वर्णन है।

3. प्रकीर्णकाध्याय

इसमें गायक के गुण और दोष, गति के गुण और दोष, वाग्गेयकार के लक्षण काक, गमक, रूपकालाप्ति, रागालाप्ति तथा वृंद (कुतुप) के अंतर्गत अनेक वीणाओं और अवनद्य वाद्यों का वर्णन है।

Scanned with CamScanner

4. प्रबंधाध्याय

इसमें मार्गी देशी संगीत, गांधर्वगान, निबद्ध-अनिबद्ध आदि भेद धातु प्रबंधों के 75 प्रकार, सूड, अलि, विप्रकीण, इला एवं उसके भेद 'रीति' गण, मात्रा आदि का वर्णन मिलता है।

5. तालाध्याय

इसमें मार्ग, ताल, गीत तथा देशी ताल प्रकरण के अंतर्गत 121 तालों का परिचय, नाम, रूप और प्रस्तार सहित वर्णन मिलता है।

6. वाद्याध्याय

इस अध्याय के अंतर्गत वाद्यों के प्रकारों का वर्णन किया गया है, जैसे–तत, वितत, सुषिर, अवनद्य तथा छत्र वाद्य। इस अध्याय में वादकों के गुण एवं दोषों का वर्णन भी किया गया है।

7. नर्तनाध्याय

इस अध्याय के अंतर्गत नाट्य, नृत्त व नृत्य की विस्तार से व्याख्या की गई है। विभिन्न अंगों द्वारा किए जाने वाले अभिनय व अभ्यास के लिए उचित निर्देश दिए गए हैं।

इस ग्रंथ में रागों का वर्गीकरण राग लक्षण के आधार पर किया गया है। इसका वर्गीकरण निम्नलिखित है–

ग्राम राग	–	30
राग	–	21
पूर्व प्रसिद्ध भाषांग राग	–	11
पूर्व प्रसिद्ध उपांग राग	–	03
पूर्व प्रसिद्ध भाषा राग	–	96
पूर्व प्रसिद्ध अंतर भाषा राग	–	04
उनके काल में प्रचलित क्रियांग राग	–	03
इस काल में प्रचलित उपांग राग	–	22
उपराग	–	08
पूर्व प्रसिद्ध रागांग राग	–	08
अधुना प्रसिद्ध राग	–	12
पूर्व प्रसिद्ध विभाग राग	–	20
उनके काल में प्रचलित राग	–	01
उनके काल में प्रचलित भाषांग राग	–	09

शारंगदेव ने यद्यपि अपने ग्रंथ की नींव भरत के 'नाट्यशास्त्र' तथा मतंगमुनि के ग्रंथ 'वृहद्देशी' पर रखने का प्रयास किया, परंतु यह स्पष्ट है कि उनके समय में भरत की जातियाँ नष्ट हो चुकी थीं तथा मतंग के समय के देशी रागों का स्थान दूसरे अन्य रागों ने ले लिया था।

संगीत पारिजात

पं० अहोबल कृत 'संगीत पारिजात' हिंदुस्तानी संगीत पद्धति का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है। इस प्रसिद्ध ग्रंथ की रचना 1665 ई० के उत्तरार्ध में हुई मानी जाती है। इस ग्रंथ में ऐसे अनेक रागों का वर्णन है, जो दक्षिण

Scanned with CamScanner

भारत में विशेष रूप से प्रचलित हैं। किंतु जिस संगीत पद्धति की विवेचना इस ग्रंथ में की गई है, वह उत्तरी संगीत पद्धति है। पं० अहोबल दक्षिण भारत के निवासी थे और उत्तर भारत में आकर उन्होंने इस ग्रंथ की रचना की। भारत के संगीत के इतिहास में यह ग्रंथ कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। यह अपने समय का प्रतिनिधि ग्रंथ माना जाता है। यह ग्रंथ मंगलाचरण से प्रारंभ होता है। इसके बात इसमें स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, स्वर विस्तार, वर्ण अलंकार और राग प्रकरणों में संगीत के पारिभाषिक शब्दों और अन्य तत्वों पर विचार किया गया है।

संगीत पारिजात में स्वरों की स्थापना ठीक 'हृदयकौतुक' के अनुसार की गई है। इस प्रकार का शुद्ध सप्तक हमारे काफी थाट के समान है। पं० अहोबल पूर्व लेखको की भाँति एक सप्तक में 22 श्रुतियाँ मानते थे। उन्होंने 7 शुद्ध स्वरों को उन पर स्थापित करने के लिए निम्नलिखित नियम अपनाया है–

चतुश्चतुश्चैव षड्ज मध्यम पंचमाः।
द्वै द्वै निषाद गंधारौ त्रिस्त्री ऋषभ धैवतो।।

अर्थात सा म प की चार-चार श्रुतियाँ, रे ध की तीन-तीन श्रुतियाँ और ग नी की दो-दो श्रुतियाँ हैं। वे शुद्ध स्वरों को उनकी अंतिम श्रुतियों पर स्थापित करते हैं।

प्राचीन ग्रंथकारों ने श्रुति और स्वरों में अंतर बताया है, परंतु पं० अहोबल इनमें ज्यादा अंतर नहीं मानते। उनके अनुसार, श्रुति एवं स्वर में उतना ही अंतर है, जितना कि साँप और उसकी कुंडली एवं स्वर्ण और आभूषण में होता है। उनके अनुसार, भिन्न-भिन्न रागों में समस्त श्रुतियाँ ही स्वर बनकर प्रयुक्त होती हैं। जो ध्वनियाँ उस राग में प्रयुक्त होती हैं, वे स्वर बन जाती हैं और जो प्रयुक्त नहीं होती, वे श्रुतियाँ बनी रहती हैं।

पं० अहोबल प्रथम ग्रंथकार थे, जिन्होंने वीणा के तार की लंबाई के निश्चित विभाग बनाकर शुद्ध तथा विकृत स्वरों की स्थापना का मार्ग दर्शाया। यद्यपि उन्होंने स्वरों के 29 नामों का उल्लेख किया है, परंतु उन्होंने 12 से ज्यादा स्वरों का प्रयोग नहीं किया, क्योंकि उनके बनाए हुए विकृत स्वरों के समान स्वरों के दूसरे नाम हैं। पं० अहोबल ने अपने ग्रंथ में 122 रागों का वर्णन किया है। उन्होंने रागों को थाटों के अंतर्गत नहीं रखा, परंतु तालों का उल्लेख अवश्य किया है। संगीत पारिजात में प्रत्येक राग में लगने वाले आरोह, अवरोह, ग्रह, न्यास और मूर्च्छना के स्वरों का वर्णन मिलता है। उन्होंने इस ग्रंथ में अपने समय के प्रचलित रागों के गायन का समय भी निश्चित किया है।

नाट्यशास्त्र में सांगीतिक तत्व

भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र का काल पाँचवीं शताब्दी माना जाना है। नाट्यशास्त्र को प्राचीन संगीत का आधार कहा जाता है। इनमें संगीत के श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, जाति आदि विषयों की विषद व्याख्या की गई है। इस ग्रंथ में 21 मूर्च्छनाओं, 7 स्वरों तथा 22 श्रुतियों का वर्णन मिलता है। भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र के छह अध्यायों में संगीत संबंधी विषयों पर प्रकाश डाला गया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन समय में संगीत और नाटक में बहुत ही घनिष्ठ संबंध था। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में निम्नलिखित सांगीतिक तत्वों का उल्लेख किया है।

1. इस पुस्तक में केवल मध्यम और षड्ज ग्राम का उल्लेख मिलता है। गांधार ग्राम को छोड़ दिया गया है। भरतकाल में जातियों का गायन था, राग का नहीं। इसलिए उनकी पुस्तकों में राग का नाम नहीं मिलता।

Scanned with CamScanner

2. षड्ज ग्राम की 7 और मध्यम ग्राम की 11 जातियाँ अर्थात कुल 18 जातियाँ मानी जाती हैं। 18 जातियों को पुनः दो भागों में विभाजित किया गया है–शुद्ध और विकृत। शुद्ध जातियाँ 7 और विकृत जातियाँ 11 मानी गई हैं। इसमें षड्ज और मध्यम दोनों ग्रामों की 11+7=18 जातियाँ मिली हुई हैं।
3. जाति के दस लक्षण माने गए हैं–ग्रह, अंश, तार, मंद्र, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, षड्वत्व और औडुवत्व।
4. इसमें केवल दो विकृत स्वर माने गए हैं–काकली निषाद (नि) और अंतर गांधार (ग)।
5. इसमें वादी, संवादी, अनुवादी और विवादी स्वरों का वर्णन किया गया है। संवादी स्वर में 9 अथवा 13 श्रुतियों तथा विवादी स्वर में दो श्रुतियों को दूरी मानी गई है। मध्यम स्वर को आवश्यक स्वर माना गया है और इसे अविलोपी स्वर कहा गया है।
6. इस ग्रंथ में भरतमुनि ने एक सप्तक के अंतर्गत 22 श्रुतियाँ और सात शुद्ध स्वर माने हैं। प्रत्येक श्रुति को उसकी अंतिम श्रुति पर स्थापित किया गया है।

भरतमुनि जी स्वयं एक 'मतकोकिला' वादक थे। मतकोकिला एक प्रकार की वीणा थी। इस वीणा में 21 तार होते थे और उन पर तीनों सप्तकों की अभिव्यक्ति होती थी। वाद्यशास्त्र में विपंची, चित्रा, कच्छपी, घोषक आदि वीणा के प्रकारों की चर्चा की गई है। नाट्यशास्त्र को संगीत का प्रथम ग्रंथ माना जाता है।

अभ्यास-प्रश्न

1. 'संगीत रत्नाकर' ग्रंथ के लेखक कौन हैं? (**उत्तर:** *देखें पृष्ठ 52*)
2. भारतीय संगीत के इतिहास में 'संगीत रत्नाकर' के महत्व के बारे में विस्तृत रूप से लिखिए। **(सी०बी०एस०ई० 2006, 2008, 2010-15, 2018)** (**उत्तर:** *देखें पृष्ठ 52-53*)
3. 'संगीत पारिजात' भारतीय संगीत के इतिहास में एक महत्वपूर्ण सीमा-चिह्न है–अपने विचार व्यक्त कीजिए। **(सी०बी०एस०ई० 2007)** (**उत्तर:** *देखें पृष्ठ 53-54*)
4. 'संगीत पारिजात' का संक्षिप्त मूल्यांकन कीजिए। **(सी०बी०एस०ई० 2008, 2012-13, 2016, 2019)** (**उत्तर:** *देखें पृष्ठ 53-54*)
5. नाट्यशास्त्र में सांगीतिक तत्वों की विवेचना कीजिए। (**उत्तर:** *देखें पृष्ठ 54-55*)
6. 'मतकोकिला' क्या थी? भरतमुनि का इससे क्या संबंध था? लिखिए। (**उत्तर:** *देखें पृष्ठ 55*)

❑❑❑

Scanned with CamScanner